

# मरने से ज़रा क्या?



# मरने से डरना क्या ?

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१२

मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक :

**युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट**  
**गायत्री तपोभूमि**  
मथुरा (उ. प्र.)

लेखक :

**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**

मुद्रक :

**युग निर्माण योजना प्रेस**  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

# मरने से डरना क्या ?

## मृत्यु से केवल कायर ही डरते हैं

मृत्यु मनुष्य जीवन की एक अवश्यंभावी घटना है। संसार में कुछ और सत्य अथवा अटल हो या न हो, किंतु मृत्यु एक अटल एवं अतर्क्य सत्य है। मनुष्य जीवन का उदय और अस्त प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है। जो संसार में उत्पन्न हुआ है, उसे एक दिन जाना अवश्य है। मृत्यु के संबंध में इस अखंड अनिवार्यता को जानते हुए भी लोग न जाने मृत्यु से डरते क्यों हैं ?

मृत्यु का विचार आते ही लोग अजीब तरह से हताश तथा उदास हो जाते हैं। मृत्यु का नाम हृदय पर एक ऐसा धक्का मारता है, जिससे जब तक उसका प्रभाव दूर नहीं हो जाता, हृदय एक भयपूर्ण विरक्ति से भरा रहता है। मृत्यु का भय उन्हें यहाँ तक कायर तथा मिथ्यापूर्ण बना देता है कि नित्यप्रति अनेक लोगों को मरते देखकर भी अपने मरने की कल्पना में संदिग्धता का समावेश कर लिया करते हैं। भय के कारण वे अपने हृदय में इस सत्य को पूरी तरह स्थान नहीं दे पाते कि एक दिन उन्हें इस संसार को छोड़ ही देना है।

इसमें संदेह नहीं कि जो मनीषी व्यक्ति मृत्यु के अनिवार्य सत्य को साहस के साथ हृदयंगम कर लेते हैं, वे न केवल उसके भय से ही मुक्त रहते हैं, प्रत्युत जीवन का पूरा-पूरा लाभ भी उठाते हैं। जिन्हें यह विश्वास रहता है कि न जाने मृत्यु किस समय अपनी गोद में उठा ले, वे जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग कर लेने में बड़ी तत्परता तथा सतर्कता से लगे रहते हैं। वे बहुत कुछ, मृत्यु की बेला से पूर्व कर डालने के लिए प्रयत्नों में कमी नहीं रखते। मृत्यु का वास्तविक विश्वास उन्हें अधिकाधिक सक्रिय बना देता है।

---

इसके विपरीत जो मिथ्याविश्वासी मृत्यु से डर-डर कर जीवन में रेंगते हैं, वे बेचारे कुछ दूर भी ठीक से नहीं चल पाते और मृत्यु आकर उन्हें पकड़ ले जाती है। मृत्यु जब अटल है, अनिवार्य है, तब उससे डरना क्या? मृत्यु से न डरने वाले ही उसे वरण करके चिरंजीवी बनते हैं।

मृत्यु से अभय रहने वाला व्यक्ति उसे एक चुनौती मानकर साहस तथा उत्साहपूर्वक जीता हुआ यह कोशिश करता है कि वह जीवन के राजकुमार की तरह मृत्यु का मेहमान बने। जीवन की तरह मृत्यु भी उसे पाकर कृतार्थ हो जाए।

मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में भय की गणना भी की गई है। किंतु वह भय कायरता का नहीं, सतर्कता का लक्षण है। यों तो कोई भी मरना नहीं चाहता। मृत्यु से बचने का हर संभव उपाय किया करता है। सड़क पर चलते मोटर से बचना, नदी में नहाते ढूबने से सावधान रहना, मृत्यु भय नहीं है। हिंस्तुओं, रोगों तथा शत्रुओं से जीवन रक्षा करने में यथासंभव उपायों का करना स्वाभाविक है। निरर्थक एवं निरुद्देश्य मर जाना कोई वीरता नहीं, मूर्खता है। 'हाय मैं मर जाऊँगा' की भावना ही मृत्यु का वह भय है जो कायरता की कोटि में आता है। मनुष्य को 'हाय मर जाऊँगा' की हीन भावना के वशीभूत होकर कायरता का परिचय नहीं देना चाहिए।

'हाय मर जाऊँगा' की भावना में रो-तड़प कर मृत्यु से बचा तो जा ही नहीं सकता। उलटे यह भावना जीवन को बोझिल एवं भयावह बना देती है। मृत्यु से निरपेक्ष रहकर जीवन रक्षा का हर संभव उपाय करते हुए, आ जाने पर साहसपूर्वक उसका सहर्ष आलिंगन करने में ही पुरुषार्थ की शोभा है। महान मृत्यु के अवसर पर जीवन का मोह एक अश्रेयस्कर दुर्बलता है।

मृत्यु का भय उत्पन्न करने में परलोक की चिंता का बहुत बड़ा हाथ है। लोगों का यह सोचते रहना कि मर जाने के बाद न जाने हमारा क्या होगा? हम कहाँ, किस लोक अथवा योनि में भ्रमण करेंगे, न जाने हमारी सद्गति होगी अथवा अगति, मृत्यु भय को एक बड़ी सीमा तक बढ़ा देता है? परलोक की चिंता ठीक है। वह करनी भी चाहिए। किंतु इस शुभ चिंता से मृत्यु के अशुभ भय का पैदा होना बड़ी ही असंगत तथा अस्वाभाविक बात है। फिर भी परलोक की चिंता से लोगों में मृत्यु का भय उत्पन्न होता है। इसका एक मात्र कारण लोक को बिगाड़ कर चलना है। परलोक का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। परलोक इस लोक की ही परिणति है। जिस प्रकार का हमारा लोक होगा, हमारे लिए उसी प्रकार के परलोक की रचना होगी। यदि हमने अपने आलस्य, अकर्म, अकर्तव्य अथवा अनीति, अत्याचार से अपने लोक को दग्ध कर लिया है और ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों तथा वासनाओं से विषैला बना लिया है तो निश्चय ही उसी के अनुसार हमें जलते हुए लोकों को साकार करने पर विवश होना ही होगा। यदि हम जानते हुए भी अपने कर्मों से पतित परलोकों की रचना के लिए लोक में नींव रख रहे हैं तो मृत्यु का भय हमें सताएगा ही। क्योंकि हम जानते हैं कि जो कुछ हम कर रहे हैं मृत्यु के उपरांत उसका दंड भोगना ही है और इसीलिए मृत्यु की कल्पना आते ही भय से सिहर उठते हैं।

इसके विपरीत यदि हम लोक को परलोक का आधार मान कर, उसे सजाने, सँवारने और सुंदर बनाने के शुभ प्रयत्नों को ईमानदारी से करते रहें तो मृत्यु-कल्पना हमें विभोर करती रहे। क्योंकि हम जानते हैं, हम जो कुछ शिव तथा सुंदर कर रहे हैं वह हमारे लिए मंगलमय मरने से डरना क्या? )

( ५

परलोक की रचना कर रहा है जिनको हम मृत्यु के उपरांत पुरस्कार के रूप में पाएँगे।

मनुष्य का विचार सानिध्य भी मृत्यु के विषय में भय-अभय का कारण होता है। जिसकी चिंतनधारा जितनी अधिक जीवन के समीप रहेगी, वह उतना ही कम मृत्यु से डरेगा और जिसके विचार अधिक मृत्यु का चिंतन करेंगे, वह उतना ही उससे भयभीत रहेगा। मृत्यु का चिंतन क्या करना। वह अपने समय पर आएगी, आती रहेगी। उसका विचार छोड़कर मनुष्य को जीवन की आराधना में लगा रहना चाहिए। चिंतन का विषय जीवन है, मृत्यु नहीं। मृत्यु का चिंतन करने से जीवनी-शक्ति का ह्रास होता है, जिससे मृत्यु का भय स्थायी रूप से सूक्ष्म में बस जाया करता है। ऐसी भयपूर्ण स्थिति में कर्तव्यों का पालन यथाविधि नहीं हो पाता, जो स्वयं एक बड़ा दुःख प्रसंग होता है। मनुष्य जब ठीक प्रकार से अपने कर्तव्यों में लगा रहता है, मृत्यु का भय उसके पास नहीं फटकने पाता। कर्तव्यों की अपूर्ति इस विचार के साथ मृत्यु का भय लाती है कि यह नहीं कर पाया, वह करने से रह गया है। सारा जीवन बेकार जा रहा है। यों ही दिन गुजर जाएँगे और एक दिन मृत्यु के मुख में चला जाना होगा। मनुष्य अपनी स्थिति के अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन तत्परता से करता रहे तो भी मृत्यु का भय उसे नहीं सताने पाए। फिर वह कर्तव्य छोटे हों अथवा बड़े, साधारण हों अथवा असाधारण, कर्तव्यहीन अकर्मण्यता तो साक्षात् मृत्यु ही कही गई है।

बहुत से लोग अपने बाद की स्थिति पर विचार करते-करते मृत्यु से भयभीत होने लगते हैं। मेरे बाद न जाने क्या होगा? मेरे मर जाने पर बीबी-बच्चे क्या करेंगे? कहाँ किसका आश्रय लेंगे? पता नहीं उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ेंगे? इस प्रकार की कल्पनाएँ

निर्थक जल्पनाएँ ही हैं। ऐसे लोग अपने को ही बीबी-बच्चों का विधाता समझते हैं। वे समझते हैं कि जब तक वे जिंदा हैं, बीबी-बच्चों के लिए स्वर्ग संचय कर रहे हैं। उनके न रहने के बाद वे सब यातनापूर्ण नरक में गिर जाएँगे। मानो उन सब की जीवन गाड़ी उनकी जिंदगी से ही चल रही है जिसके खत्म होते ही सबका खेल खत्म हो जाएगा। दूसरों के लिए अपने को सब कुछ समझना दंभ है। जब हम नहीं थे संसार का सारा काम चल रहा था और जब नहीं रहेंगे तब भी सब काम चलता रहेगा। संसार का कोई काम किसी के न रहने से रुकता नहीं। यह बात सही है कि हमारा जीवन आश्रितों के लिए आवश्यक है। किंतु इस आवश्यकता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम अपने न रहने की कल्पना के साथ उनका जीवन जोड़कर कायरों की तरह मृत्यु भय से रोते-कलपते रहें। अपने बाद की कल्पना के भयावह चित्र बनाने के बदले हमारी बुद्धिमानी इसी में है कि हम मरने से पूर्व ईमानदारी के साथ अपने आश्रितों को बहबूदी के लिए जो कुछ कर सकें करें। ऐसा करने से ही अपने बाद की चिंता की सार्थकता है। केवल कल्पना करते रहना मूर्खता ही होगी। मृत्यु को भय का कारण बनाने की अपेक्षा उसे अपने कर्मों का सजग प्रहरी बना कर चलने वाले सदाशयी व्यक्ति जीवन के अधिकारी बनते हैं।

## मौत से न डरिए, वह तो आपकी मित्र है

मृत्यु के बारे में सामान्य व्यक्तियों की कल्पनाएँ बड़ी भयावह होती हैं। सारा भय संसार में मौत का ही है। अँधेरे में पाँव रखते जी काँपता है, सोचते हैं कहीं सर्प न काट ले। साधारण-सी बीमारी से व्याकुल हो जाते हैं, सोचते हैं कहीं हृदय गति न रुक जाए। दुश्मन से

घबड़ाते हैं, कहीं प्राण न हर ले। सर्वत्र मौत का ही भय समाया है। खाते-पीते, चलते-फिरते, उठते-बैठते एक ही आशंका परेशान रखती है, कहीं कुछ हो न जाए जो मौत के मुँह में जाना पड़े।

मौत का विश्लेषण करने से पहले कुछ आत्म-तत्त्व पर विचार कर लें। यह देखते हैं कि संपूर्ण शरीर किन्हीं दो वस्तुओं के सम्मिश्रण से बना है। शरीर और उसकी चेतना—यह दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। भ्रम इसलिए होता है कि शरीर की तरह ही चेतन-तत्त्व दृश्य नहीं है। उसे इन स्थूल आँखों से नहीं देखा जा सकता। फिर भी उसके अस्तित्व से तो इनकार नहीं किया जा सकता। यदि शरीर ही सब कुछ होता तो संभवतः मृत्यु ही नहीं होती या फिर उसका स्वरूप ही कुछ और होता। शरीर की विभिन्न क्रियाओं और चेष्टाओं से भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह किसी भिन्न तत्त्व से परामृष्ट है। यह मूलतः आत्मा या सूक्ष्म शरीर ही हो सकता है। भेद सिर्फ इसलिए है कि वह अदृश्य है और हम विश्वास केवल दृश्य पदार्थों पर ही करते हैं।

किसी बैटरी के सैल तोड़कर देखिए, आपको कहीं भी विद्युत दिखाई नहीं देगी। रासायनिक तत्त्व जिंक, पीतल या ताँबे की छड़ आप भले ही देख लीजिए, पर आपको बिजली नाम की कोई वस्तु देखने को नहीं मिलेगी। जिन तारों से बिजली दौड़ रही हो उन्हें गौर से देखिए, आपको कोई भी वस्तु रेंगती हुई दिखाई न देगी। किंतु 'टंगस्टन' तारों में वही बिजली प्रवाहित होकर प्रकाश के रूप में दिखाई देने लगती है। अतः किसी भी अवस्था में बिजली के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकते।

ठीक यही अवस्था शरीर में आत्म-तत्त्व की है। वह जो चेतन है वही 'मैं' हूँ—इसे जानना चाहिए। जब यह जान लेते हैं कि मनुष्य

शरीर नहीं शक्ति है तो हमारे सारे लक्ष्य परिवर्तित हो जाते हैं। दृष्टिकोण ही बदल जाता है। इतनी-सी बात को समझाने के लिए ही मनुष्य के आगे तरह-तरह की घटनाएँ, ज्ञान और विवेक रखा जाता है।

मृत्यु का भय केवल इसलिए है कि शरीर चला जाएगा। हम समझते हैं कि शरीर चला गया तो सारे सुख चले गए। पर यह नहीं सोचते कि सुख चेतना की अनुभूति मात्र है। भोक्ता शरीर नहीं है। शरीर केवल वाहन है। वह एक प्रकार से हमारी सवारी है। शास्त्रकार ने इसी बात को इस तरह कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

— गीता २/२२

जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है। उसी तरह जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर नए शरीरों को प्राप्त होता है।

यह बात जान लेने की है कि आत्मा अजर-अमर है तो शरीर के प्रति आसक्ति का भाव नहीं होना चाहिए। शरीर वह साधन मात्र है जिससे हम चाहें तो परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। किंतु जब मूल लक्ष्य भूल जाता है और शरीर के सुख ही साध्य हो जाते हैं तो मनुष्य को मौत का भय सताने लगता है। यह एक तरह से मनुष्य का अज्ञान ही है अन्यथा मृत्यु मनुष्य के लिए हितकारक ही है। जीर्ण-शीर्ण शरीर की उपयोगिता भी क्या हो सकती है? प्रकृति हमें नया शरीर देने के लिए ही तो अपने पास बुलाती है। ‘नया शरीर प्राप्त होगा’—इससे तो प्रसन्नता ही होनी चाहिए। दुःख की इसमें क्या बात है? अच्छी वस्तु प्राप्त करने में तो हर्ष ही होना चाहिए।

महात्मा गांधी ने लिखा है—“मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि मृत्यु को जन्म की अपेक्षा अधिक सुंदर होना चाहिए। जन्म के पूर्व माँ के गर्भ में जो यातना भोगनी पड़ती है उसे छोड़ देता हूँ, पर जन्म लेने के बाद तो सारे जीवन भर यातनाएँ ही भुगतनी पड़ती हैं। उसका तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव है। जीवन की पराधीनता हर मनुष्य के लिए एक सी है। जीवन यदि स्वच्छ रहा है तो मृत्यु के बाद पराधीनता जैसी कोई बात न होनी चाहिए। बालक जन्म लेता है तो उसमें किसी तरह का ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है फिर भी आत्म-ज्ञान नहीं हो पाता, पर मृत्यु के बाद तो ब्राह्मी स्थिति का बोध सहज ही हो जाता है। यह दूसरी बात है कि विकारयुक्त होने के कारण उसका लाभ न उठा सकें। किंतु जिनका जीवन शुद्ध और पवित्र होता है उन्हें तो उस समय बंधनमुक्त ही समझना चाहिए। सदाचार का अभ्यास इसीलिए तो जीवन में आवश्यक बताया जाता है ताकि मृत्यु होते ही मनुष्य शाश्वत शांति की स्थिति प्राप्त कर ले।”

दार्शनिक सुकरात का भी ऐसा ही कथन है। उन्होंने लिखा है—“मृत्यु के बारे में सदैव प्रसन्न रहो और इसे सत्य मानो कि भले आदमी पर जीवन या मृत्यु के पश्चात कोई बुराई नहीं आ सकती।” इसलिए मृत्यु से घबड़ाने का कोई कारण हमारी समझ में नहीं आता। मृत्यु से एक शिक्षा हमें मिलती है और वह यह है कि हमसे जितना शीघ्र हो सके परमात्मा को जान लें क्योंकि उसके जाने बिना जीवन के पाप और बुराइयाँ साथ नहीं छोड़तीं। तरह-तरह की आकांक्षाएँ पीछे पड़ी रहती हैं। शरीर इस दृष्टि से एक अत्यंत उपयोगी यंत्र है। जीवन-साधना के समस्त उपयोगी उपकरण इसमें मौजूद हैं। अतः शरीर की यदि कुछ उपयोगिता हो सकती है तो वह इतनी ही है कि अपने ज्ञान,

बुद्धि और विवेक के द्वारा शिक्षा, विचार और वाणी के द्वारा बाह्य और आंतरिक स्थिति का सही ज्ञान प्राप्त कर लें ताकि फिर दूसरी योनियों में भटकना न पड़े। शरीर के सुख इस दृष्टि से न तो आवश्यक ही हैं और न उपयोगी ही हैं। हमारा उद्देश्य जीवन-शोधन और पारमार्थिक लक्ष्य की प्राप्ति ही होना चाहिए।

मृत्यु से डरने की आवश्यकता इसलिए भी नहीं है कि वह एक अनिवार्य स्थिति है। मनुष्य यदि डरे भी तो उससे छुटकारा नहीं मिल सकता। जितना जीवन आपको मिला है उससे अधिक कदापि नहीं प्राप्त कर सकते। फिर आप डरें क्यों? बुद्धिमानी तो इसमें है कि आप इस अनिवार्य स्थिति का लाभ उठा लें। आप मृत्यु को बुराइयों से आगाह करते रहने वाला मित्र समझें ताकि इस संसार में रहकर आत्म-कल्याण और परमार्थ के कार्य सुचारू रूप से कर सकें। जितनी जल्दी हो सके आप शुभ कर्मों का अधिक से अधिक संचय कर लें ताकि पटाखेप के बाद आपको किसी तरह पछताना न पड़े।

मनुष्य जीवन का कोई भरोसा नहीं है। मृत्यु किस क्षण आ जाए इसका कोई ठिकाना नहीं है। पल भर में ही परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। कबीरदास जी ने सच ही लिखा है—

कबिरा यह जग कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ।

काल जो बैठा मंडपै, आज मसानै दीठ॥

इस तरह हमारा अधिकार केवल मृत्यु से शिक्षा लेना ही है। अनिवार्य स्थिति का मुकाबला करने के लिए तो हममें साहस ही होना चाहिए।

दिन भर काम करते हुए शरीर थक जाता है तो रात्रि में विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। सोना एक प्रकार से थकावट मिटाने की क्रिया है। रात में पूरी नींद पा लेने से शरीर अगले दिन के लिए पूर्ण

स्वस्थ और ताजा हो जाता है। एक नई शक्ति और नवीन प्राण भर जाता है जिससे दूसरे दिन शाम तक अथक परिश्रम करते रहते हैं। मृत्यु भी जीवात्मा की ठीक ऐसी ही स्थिति है। जीवन भर की थकावट मृत्यु की गोद में जाकर ही दूर होती है। आगले जीवन के लिए शक्तिदायिनी स्थिति का नाम ही मृत्यु है। फिर इसे शत्रुवत क्यों देखें? परम विश्राम की अवस्था से हमें व्यार होना चाहिए। फिर इससे हमें लाभ ही तो है। नया जीवन, नई चेतना और नई स्फूर्ति हमें मृत्यु के उपरांत ही प्राप्त होती है।

## मृत्यु एक अनिवार्य आवश्यकता

संसार के सबसे बड़े आश्चर्य-संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा था—“संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि नित्य-प्रति दूसरों को मरते देखकर भी मनुष्य अपनी मृत्यु में विश्वास करने को तैयार नहीं होता। वह समझता है कि और कोई भले ही मरे पर वह सदा सर्वदा धरती पर बना रहेगा।”

निस्संदेह यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है कि नित्य-प्रति अनेकों को मृत्यु-मुख में जाते देखकर हम अपने संबंध में मृत्यु को अवश्यंभावी मानने को तैयार नहीं होते। हर मनुष्य अपने पूर्व पुरुषों की एक लंबी परंपरा में चला आ रहा है और यह जानता है कि उसके पूर्व पुरुष उसी की तरह इस पृथ्वी पर वर्तमान थे पर आज उनमें से कोई भी नहीं है। सब ही मृत्यु के मुख में समा कर इस धरा-धाम से नाता तोड़ गए। पूर्व पुरुषों की इतनी लंबी शृंखला जब मिटती चली आई है, तब हममें ही ऐसी कौन सी विशेषता है कि मृत्यु, पूर्व पुरुषों की तरह, एक दिन, हमको भी अपना मेहमान न बना लेगी। हर मनुष्य को एक दिन मृत्यु का

मेहमान बनना ही होगा। परमात्मा का यह अटल नियम किसी के लिए भी अपवाद नहीं बन सकता।

सोचने की बात है कि यदि मनुष्य के लिए, परमात्मा ने मृत्यु का अनिवार्य प्रतिबंध न लगाया होता तो क्या आज तक पृथ्वी पर इतनी जनसंख्या न हो जाती कि इस धरती पर तिल रखने की भी जगह न रहती। तब कहाँ तो मनुष्य रहता, कहाँ खेती करता और कहाँ जीविका के अन्य साधन स्थापित करता? वह अनंतमय जनसंख्या क्या खाती, क्या पीती और क्या पहनती? आज जब मृत्यु का अनिवार्य प्रतिबंध लगा हुआ है, हजारों लाखों मनुष्य नित्य संसार खाली करते जा रहे हैं तब तो जन-संकुलता की वृद्धि ने मानव-समाज के सामने भोजन, वस्त्र तथा निवास की समस्या विकट रूप में खड़ी कर दी है। यदि मृत्यु का प्रतिबंध न रहा होता तो इस संसार, इस मानव-समाज की क्या दशा हो जाती इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती और यदि आज भी यह प्रतिबंध उठा लिया जाए तो कुछ ही समय में हम सब की क्या दुर्दशा हो जाए, क्या इसका अनुमान कोई कर सकता है?

जब मरने का भय हर समय सिर पर सवार रहता है, साथ ही किस समय मृत्यु आ सकती है? इसका भी पता नहीं तब तो मनुष्य अपने लिए न जाने कितना संग्रह करता रहता। वह सब उसे किसी समय भी छोड़ देना पड़ सकता है। दिन-रात चोरी, मक्कारी-ठगी, छीना-झपटी, शोषण आदि कुकृत्यों द्वारा दूसरों को, दिन-रात रिक्त करने में जुटा रहता है। यदि उसे अमरता का आश्वासन मिल जाए तो लिप्सालु मनुष्य कितना प्रचंड पिशाच बन जाए, यह कह सकना कठिन है।

मृत्यु की अनिवार्यता की स्थिति में तो मदोन्मत्त व्यक्ति नए ध्वंस रचता एकदूसरे को खा जाने की कोशिश करता रहता है।

सदाजीवी होने पर उसकी उद्धतता न जाने क्या कर डालती ! संसार में हर ओर हर समय केवल रक्तपात ही होता दिखाई देता । न कहीं कोई मनुष्य शांतिपूर्वक सृजन करता दिखाई देता और न भजन करता ।

यदि मृत्यु न होती तो पुराने स्थान छोड़ते नहीं और नए उन्हें पाना चाहते—इस स्थिति में हर समय नए-पुराने का संग्राम छिड़ा रहता । पिता-पुत्र को और पुत्र अपने पुत्र को अपना स्थान अथवा उत्तराधिकार देने को तैयार न होता । मनुष्य अपने अनंत जीवनयापन की आवश्यक वस्तुओं में से एक कण तक अपने आश्रितों अथवा संतानों को देने में झिझकते । आत्मयापन की चिंता एवं आवश्यकता के दबाव में लोग कितने स्वार्थी एवं कितने संग्राहक और कितने कृपण हो जाते, क्या किसी प्रकार इसका अनुमान लगाया जा सकता है ? चिरस्थायी जीवन पाकर मनुष्यों में एकदूसरे के प्रति त्याग, सहानुभूति, सौहार्द, सहयोग, सहायता, स्नेह, सौजन्य एवं आत्मीयता का कोई भाव रहता, ऐसी आशा नहीं की जा सकती ।

संसार में जो नवलता एवं नवीनता के दर्शन होते हैं, जिस सरसता एवं सुंदरता की अनुभूति होती है, वह सब पूर्वापूर्व के गमनागमन की प्रक्रिया के कारण ही दिखलाई देती है । यदि इस पावन प्रक्रिया का प्रभाव न रहा होता तो पट परिवर्तन के अभाव में विश्व रंगमंच पर चलने वाला यह जीवन-नाटक एकरसता, एक-रूपकता एवं एक दृश्यता के कारण कितना नीरस, कितना अरुचिकर, कितना अप्रिय, कितना बोझिल और कितना असह्य हो जाता—इसका उत्तर, मनुष्य अपनी नव-रुचि एवं परिवर्तन-प्रिय वृत्ति से ही पूछ सकता है ।

जीवन के किंचित समय में ही मनुष्य न जाने कितनी बार, कितनी तरह की आधिव्याधि, ईति, भीति, दुःख, दारिद्र्य एवं शोक

संतापों का शिकार बनता रहता है और कष्ट-क्लेशों से घबड़ाकर मृत्यु माँगने लगता है। यदि उसे समापन शून्य निर्विराम जीवन मिल जाए तब उसकी यातनाएँ कितनी दीर्घजीविनी हो सकती हैं? क्या मृत्यु से द्वेष मानने वाले मनुष्य कभी इस पर विचार करते हैं? संसार में हर मनुष्य अपनी बारी में जो कुछ सुख-शांति, साधन-सुविधा अथवा रसानुभूति पा रहे हैं, अथवा जो अपनी बारी में पा चुके हैं और जो आगे पाएँगे वह सब मृत्यु के अनिवार्य प्रतिबंध के कारण ही संभव हुआ है और होगा। यदि यह प्रतिबंध न रहा होता या आज उठ जाए तो हमारा यह संसार रौरव नरक से भी भयानक बन जाए—इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। मृत्यु मनुष्य के लिए एक मैत्रीपूर्ण वरदान है। इसे परमात्मा की असीम अनुकंपा समझ कर उसे बार-बार धन्यवाद देकर कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए।

मृत्यु से भयभीत होने वाले लोगों में अधिकतर वे ही लोग होते हैं जो जीवन को उस प्रकार नहीं जीने देते जिस प्रकार एक मनुष्य को जीना चाहिए। अकरणीय एवं दंडनीय कर्मों की गठरी तैयार कर लेने वाला स्वभावतः भयभीत होगा ही। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि उसने ऐसे-ऐसे कार्य किए हैं जो माफ नहीं किए जा सकते और इसके लिए उसे परलोक में सजा पानी है। जीवन रहने तक वे उस यातना से बचे रह सकते हैं इसीलिए मृत्यु की कल्पना तक से काँप उठते हैं।

यद्यपि कुकर्मों का कुफल मनुष्य को विविध प्रकार के रोग, शोक और अयश अपवाद के रूप में जीवनकाल में भी भोगना पड़ता है और कभी-कभी कानून के शिकंजे में फँसकर भी दंड भोगना पड़ता है, किंतु मनुष्य के कुकृत्यों का भोग यहाँ ही पूरा नहीं हो जाता। उस सबको पूरी तरह से परलोक में ही भरना पड़ता है। बहुत से कुकृत्य इस प्रकार के होते हैं जो मनुष्य अपनी चतुराई से समाज तथा कानून से

छिपते रहता है और बहुतों के दंड से परिस्थिति अथवा संयोगक्ष बच्र जाया करता है। किंतु जीवन के पश्चात् परलोक में क्या प्रत्यक्ष और क्या अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर्मों का पूरा-पूरा लेखा-जोखा चुका लिया जाता है।

जिसने इस प्रकार का सुप्रबंध कर रखा है उसे तो मृत्यु से भला डर क्यों लगने लगा? जिसने मन, वचन, कर्म से अपने जीवन को यथासाध्य ईमानदारी से पवित्र एवं निष्कलंक रखने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है और यदि संयोग, प्रारब्ध, परवशता अथवा परिस्थितिवश जो कोई अकृत्य कर भी गया है, तो उसके लिए उसके हृदय में खेद, पश्चाताप तथा आत्मग्लानि हुई है और आगे के लिए और भी सावधान हो गया है। ऐसे सावधान सुकृती को मृत्यु से कभी भय नहीं लगता। क्योंकि वह जानता है कि उसने ऐसा कोई काम नहीं किया जिसके लिए उसे परलोक में दंड पाना होगा।

मृत्यु से भयभीत होने वालों में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो जीवन की लंबी अवधि को आलस्य, विलास अथवा प्रमाद में गँवा देते हैं—यहाँ तक कि अपने सामान्य कर्तव्यों तथा आवश्यक उत्तरदायित्व को भी ठीक से नहीं निभाते। जब ऐसे लोगों को मृत्यु की याद आती है, तब वे शोक करते हुए सोचने लगते हैं कि मैंने अति दुर्लभ मानव-जीवन को यों ही व्यर्थ में गँवा दिया है। यदि इसका ठीक-ठीक मूल्यांकन किया होता तो न जाने कितना क्या कर सकता था? अब मृत्यु का झोंका आकर मुझे ले जाएगा और हाथ मलते हुए इस संसार से जाना होगा। इस प्रकार के आलसी एवं असावधान व्यक्ति पश्चाताप की आग में जलते हुए अमृत्यु मनाया करते हैं और चाहते हैं कि यदि उनको दीर्घ जीवन की गारंटी मिल जाए तो वे भी कुछ कर डालें। किंतु खेद है कि उनको इस प्रकार की कोई गारंटी नहीं मिल सकती।

पर इससे भी ज्यादा खेद एवं आश्चर्य की बात यह होती है कि वे पश्चाताप में जलते हुए मृत्यु-चिंता से भयभीत तो होते रहते हैं किंतु शेष जीवन को पूरी तरह से करणीय कार्यों में नहीं डुबा देते, जिससे जो कुछ थोड़ा-बहुत लोक-परलोक बन सके, वही सही। यदि आज भी वे जितनी चिंता मृत्यु की और जितनी कामना अधिक जीवन की किया करते हैं, यदि उतनी चिंता अपने कर्तव्यों के लिए करें और पूरक गति से काम में जुट जाएँ तो संभव है कि उनकी तन्मयता एवं तीव्रता विगत जीवन की क्षतिपूर्ति कर दे। किंतु दुर्भाग्य है कि दिन-दिन आलस्य, विलास एवं प्रमाद का अभ्यासी मृत्यु की चिंता करने के अतिरिक्त कुछ करना नहीं चाहता।

धोखे से आना तो दूर, यदि कह कर भी आए, तब भी मृत्यु उन कर्मवीरों को भयभीत नहीं कर सकती जिनका अणु-क्षण अपने पावन कर्तव्यों में आत्मविभोर होकर निमग्न रहता है। उन्हें जब अपने काम के सम्मुख दीन-दुनिया की खबर ही नहीं रहती, तब भला मृत्यु जैसे निरर्थक विषय पर विचार करने के लिए न तो उनके पास फालतू समय ही होता है और न मस्तिष्क ही। कर्तव्यवान व्यक्ति दिन-रात जिंदगी के मुखर मार्गों में ही विचरण किया करता है, मृत्यु की सुनसान दरीचियों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। अकर्मण्यता, निष्क्रियता एवं अकर्तव्यशीलता मृत्यु की सबसे बड़ी विकृत स्मारिकाएँ हैं। इनको समीप न आने देने वाला कर्मवीर मृत्यु से डरना तो दूर उसकी याद तक नहीं करता।

धर्मवीर तो मृत्यु के नाम से पुलकित हो उठता है। जिसने सत्कर्मों द्वारा सुकृत की पूँजी जमा कर रखी है, धर्म धन का संबल संचय कर लिया है, उसके लिए मृत्यु तो परलोक का निमंत्रण होता है

जहाँ उसके सत्कर्मों के पुरस्कार प्रतीक्षा किया करते हैं। जिसने अपने जीवन में पुण्य-परमार्थ का पथ प्रशस्त किया है, अध्यात्म का चिंतन एवं परमार्थ का स्मरण किया है उसकी आत्मा तो स्वयं ही शरीर बंधन से मुक्त होने के लिए व्यग्र रहती है। वह सोचती है कि कब उसकी शरीर यात्रा समाप्त हो और कब वह पिजड़े से छूटे पक्षी की तरह मोक्ष की ओर उड़ान भरे।

अडिग, अनिवार्य एवं आवश्यक सत्य मृत्यु से डरना क्या। बल्कि उसकी कल्पना से तो मनुष्य को अधिकाधिक सक्रिय होकर अपने लोक-परलोक को बनाने के लिए तीव्रता से तत्पर हो जाना चाहिए। उसे अपने सुकृत कार्यों को यह सोचकर बढ़ा देना चाहिए कि न जाने अतिथि, अनाहूत एवं अपूर्वज्ञात मृत्यु किस समय आ जाए? उसके आने से पूर्व वह सब कुछ कर ही डालना चाहिए जो कि हमें करना है और हमारे करने योग्य है।

## मृत्यु हमारे जीवन का अंतिम अतिथि

मृत्यु और जीवन एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं। मृत्यु जीवन का उद्गम है तो जीवन का पर्यवसान भी मृत्यु की गोद में ही होता है। रात्रि के गर्भ से ही दिन का उदय होता है, जीवन भी मृत्यु की कोख से पैदा होता है। दिन का अंत रात्रि में होता है, उसी तरह जीवन का अंत मृत्यु में। वस्तुतः मरण ही दूसरे अर्थों में जन्म है। दार्शनिक बेकन ने कहा है—“मृत्यु से नया जीवन मिलता है, केवल वहीं से जहाँ मनुष्य मृत्यु की गोद में सोता है, पुनरुत्थान का शुभारंभ होता है।”

पाश्चात्य विचारक कोल्टन के शब्दों में, “मृत्यु उन्हें मुक्त कर देती है जिन्हें स्वतंत्रता भी मुक्त नहीं कर सकती। यह उनकी प्रभावशाली चिकित्सा है जिन्हें औषधियाँ ठीक नहीं कर सकती। यह उनके लिए

आनंद और शांति की विश्राम-स्थली है जिन्हें समय सांत्वना नहीं दे पाता।”

दिन भर काम-काज करके हम थके-थकाए निद्रादेवी की गोद में सोते हैं और सुबह उठने पर नई ताजगी, स्फूर्ति, आशा, उत्साह से काम में जुट जाते हैं। मृत्यु भी ऐसी ही निद्रा है, महानिद्रा जिसके अज्ञात किंतु सुखकर अंक में हम जीवन भर की दौड़-धूप से क्लांत, परेशान होकर, थककर, शरीर से जीर्ण-शीर्ण होकर सोते हैं और फिर नव जन्म के द्वारा जाग पड़ते हैं, एक शिशु की किलकारियाँ भरते, उछलकूद करते, नया ताजा शरीर लेकर, नई चेतना नई स्फूर्ति लेकर।

बालक दिन भर अपने खिलौनों से अपने मित्रों में खेलता है। कई बार वह अपनी भूख-प्यास, आराम की बात भी भूल जाता है लेकिन उसकी हितचिंतक माँ समय पर उसकी ओर ध्यान देती है। उसके न चाहते हुए भी, उसका खिलौनों में, साथियों में, मन भटकते रहने पर भी, मचलने, रोने-चीखने चिल्लाने पर भी वह अपने प्यारे पुत्र को गोद में उठा लेती है। थपकियाँ देकर प्यार से सुला देती है और सोते में ही उसे आँचल का दूध पिलाकर पुष्ट कर देती है। आह ! प्रकृति माता भी कितना ध्यान रखती है प्राणियों का ? वह अपने मौत के प्यार भेर हाथों में उठा लेती है, हमें हमारे न चाहते हुए भी और अपनी अंक में सुला लेती है, तब तक जब तक हमारी थकान मिटकर हम जाग नहीं पाते। जागने पर वह नहला-धुलाकर नए वस्त्र पहनाकर, नव-शृंगार करके फिर हमें जग के क्रीडांगण में खेलने को भेज देती है, जहाँ बहुत से साथी मिल जाते हैं, खेलने के विविध वस्तु-पदार्थ।

मृत्यु मानो छुट्टी मनाना है। लोग अपने काम से छुट्टी लेकर नदी, समुद्र में गोता लगाने, सैर-सपाटे करने जाते हैं। मृत्यु के द्वारा भी

हम अनंत-जीवन के समुद्र में गोता लगाने, एक सुरम्य प्रदेश की यात्रा करने जाते हैं, जिसकी कल्पना भी हम नहीं कर पाते। मरण एक महायात्रा है, महाप्रस्थान है, महानिद्रा है। जीवन और जगत के कार्य व्यापार से विरत होकर एक लंबी छुट्टी बिताना।

गीताकार ने मृत्यु को मानों वस्त्र बदलना बतलाया है। जिस तरह फटे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र को उतार कर हम नया वस्त्र धारण करते हैं उसी तरह मृत्यु भी जीर्ण-शीर्ण, जर्जर, असमर्थ, अशक्त शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करना है। प्रकृति माता मनुष्य को मृत्यु के रूप में बुलाती है, नए वस्त्र पहनाकर फिर भेज देती है।

छत पर पहुँचने के लिए सीढ़ियों पर होकर जाना पड़ता है। जीवन के परम लक्ष्य की पूर्णता प्राप्ति तक जाने के लिए भी हमें जन्म-मरण के सोपानों पर से गुजरना पड़ता है। मरण मानो वर्तमान सीढ़ी से आगे की सीढ़ी पर पहुँचने के लिए पैर उठाना है, जन्म मानो सामने वाली सीढ़ी का आधार लेकर ऊपर पहुँचने की तैयारी करनी है।

व्यापारी अपनी दूकान में तरह-तरह का सामान रखता है। और बेचने खरीदने का क्रम रात-दिन जारी रखता है। लेकिन साल में एक बार कुछ समय के लिए वह खरीद-फरोख्त का काम बंद करके अपने सामान का चिट्ठा बनाता है। क्या खरीदा, क्या बेचा और कितना लाभ कमाया? ऐसा हिसाब प्रत्येक व्यापारी वर्ष में एक बार लगाता है। मृत्यु भी मानों जीवन के हिसाब-किताब और लाभ पर विचार करने का अवसर है। कई वर्षों से चल रहे जीवन व्यापार का आखिर कभी तो हिसाब होना ही चाहिए और मृत्यु ही ऐसा अवसर है जब हम अपने लाभ-हानि पर विचार करके फिर से दुकान लगाने एवं भूल सुधारने का कार्य संपन्न करते हैं।

मृत्यु मानो भगवान का निमंत्रण है। विश्वकवि र्खीद्रनाथ टैगोर ने कहा है—“मृत्यु तो प्रभु का आमंत्रण है। जब वह आए तो उसका द्वार खोलकर स्वागत करो, चरणों में हृदय धन सौंपकर प्रभु का अभिवादन करो।” माता जब श्रावण में अपनी बेटी को उसकी ससुराल से बुलाती है तो बेटी के हृदय में कितनी प्रसन्नता-उत्सुकता पैदा होती है। उसका हृदय भी माता के यहाँ जाने के लिए सावन के बादलों की तरह उमड़ने लगता है। पीहर जाकर वह स्वतंत्रता के साथ आनंद-उल्लास का जीवन बिताती है। मृत्यु भी मानों महा-माता द्वारा अपने घर बुलाने के लिए निमंत्रण होता है हमारे लिए।

मृत्यु जीवन का एक बहुत ही आवश्यक और अनिवार्य अंग है। यदि मृत्यु न हो तो यह जीवन भार बन जाए। यह संसार काँटों की तरह चुभने लगे। हीन से हीन व्यक्ति में भी जीने की जो चाह है वह मृत्यु की कृपा से ही है। मृत्यु को हटा दीजिए, जीवन से लोग ऊबने लगेंगे। यह मृत्यु का अस्तित्व न रहे तो कल्पना कीजिए कि उन लोगों का क्या हाल हो जो अनेकों कष्ट पा रहे होते हैं। रोग, शोक, अभाव, कठिनाइयों की असह्य मार से मृत्यु देवता ही तो बचाता है। जीर्ण-शीर्ण, परावलंबी, असमर्थ वृद्ध शरीर से छुटकारा मरण देवता ही दिलाते हैं। शारीरिक असमर्थता के कारण परावलंबी हो जाने वाले लोगों का मुक्तिदाता, असाध्य रोगों से ग्रस्त लोग जिनकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती, उनका धन्वंतरि, परमदयालु मृत्यु देवता ही है। संसार जिन्हें टुकरा देता है, समय जिनके आनंद-खुशी को छीन लेता है उन्हें मौत ही अपने अंक में बिना किसी भेद-भाव के स्थान देती है।

जीवन के कड़वे-मीठे जीवन घूँट यदि आदमी एक लंबे समय तक सँजोए रखे तो वह उनके बोझ से दब जाए। अधिक नहीं, एक जीवन की घटनाओं, बातों, अनुभूतियों को याद रखा जाए तो उनके

विशाल बोझ से मनुष्य परेशान हो उठे, जीवन असह्य हो जाए। लेकिन मृत्यु का विधान इन सबको भुलाने के लिए ही प्रकृति माता का एक वरदान मिला है। मौत के दरवाजे पर आकर हमें जीवन की समस्त अच्छी-बुरी, स्मृति-अनुभूतियाँ, घटनाएँ विस्मरण हो जाती हैं। उन्हें नए संसार की यात्रा पर जाने से पूर्व ही इसी दुनिया के साथ छुड़ा देती है मृत्यु देवी। बहुत सी ऐसी अच्छी-बुरी घटनाएँ जिनकी याद मनुष्य भुला देना चाहता है, लेकिन जीते जी वह स्वभाववश और दुनिया वालों के कारण उन्हें भुला नहीं पाता और उनकी उधेड़-बुन में परेशान रहता है, मृत्यु ही उसे सरलता से इनके जंजाल से छुटकारा दिला देती है।

मृत्यु से ही इस संसार में सौंदर्य का आकर्षण बना हुआ है। इसी के कारण प्रेम है। यदि मृत्यु न होती, सब अमर होते तो एक दूसरे की तरफ स्नेह भरे हृदय से देखते भी नहीं। कठोरता, रुखापन फैल जाता। कोई किसी को अपना नहीं कहता। बहुत बार बुराइयों से लोग इसलिए बचे रहते हैं कि उन्हें मृत्यु का, अपनी छोटी सी जिंदगी का ख्याल हो जाता है और इस तरह संसार में अनेक बुराइयाँ पनप ही नहीं पातीं। यदि मनुष्य अमर हो जाए तो कुछ भी करने में नहीं चूके। यदि मनुष्य के पाँव कहीं रुकते हैं तो मौत के दरवाजे पर।

मृत्यु मनुष्य के लिए त्याग-उत्सर्ग का पाठ सिखाती है। साथ ही अनासक्त होने का व्यावहारिक प्रयोग है यह। मनुष्य जीवन भर वस्तु-व्यापार में लीन रहता है। इनका इस तरह संग्रह करता है, मानो उसे सदा-सदा इसी धरती पर रहना है। नीति-अनीति जैसे भी बने कमाने, संग्रह करने, सुख-साधन जुटाने में ही सारा जीवन लगा रहता है। लेकिन मौत आती है और चुपके से हमें अपने अज्ञात हाथों में उठा लेती है। सब कुछ यहीं धरा रह जाता है। छोड़ देना पड़ता है। लेकिन

मृत्यु कोई कठोरता-क्रूरता नहीं है जो बलपूर्वक मनुष्य को यह त्याग कराती है वरन् यह तो मंगलकारिणी है जो अनेक आसक्ति, मोह, तृष्णा के दलदल में फँसे मनुष्य को निकालकर उसे मुक्त कराती है। जगत के वस्तु-पदार्थों के संग से लगे कल्पणों को मृत्यु माता ही अपने हाथों से धोती है, उन्हें छुड़ा देती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई माँ अपने बच्चे के शरीर में लगी गंदगी को साफ करती है।

अन्य देशों में जहाँ मृत्यु को जीवन का अंत माना जाता है, वहाँ हमारे यहाँ मृत्यु को विश्राम, निद्रामात्र समझा जाता है। मृत्यु पर भी हमारे यहाँ जन्म की तरह खुशियाँ मनाने, जुलूस निकालने, कीर्तन-गान करने आदि का विधान है। सोया हुआ बालक फिर उठकर अपने खिलौनों से खेलने लगता है। मृत्यु के बाद फिर से हम नया जीवन शुरू करते हैं। पिछले जीवन में जहाँ अध्याय छोड़ा था उससे आगे नए अध्याय का प्रारंभ फिर करते हैं। रात को अधबुनी चादर छोड़कर सो जाने वाला जुलाहा दूसरे दिन वहाँ से अपनी चादर बुनना शुरू करता है जहाँ उसने छोड़ी थी। पूर्व जन्म के ज्ञान, संस्कार, स्वभाव आदि की कमाई नए जन्म में फिर से मिल जाती है। इस तरह मौत सबकी समाप्ति नहीं है अपितु शरीर रूपी साधन को दुरुस्त करके नए उत्साह, नई शक्ति से मंजिल की ओर गतिशील होने की प्रक्रिया है मौत।

## मृत्यु का सदा स्मरण रखें

मृत्यु के विषय में निश्चित सभी होते हैं किंतु निश्चित कदाचित कोई-कोई ही होते हैं। वैसे मृत्यु की चिंता सभी को होती है।

मृत्यु की चिंता न करने वालों में वे ही बोधवान सत्पुरुष होते हैं जो उसके सम्मुख उपस्थित होने की तैयारी करते रहते हैं। इस अनायास

आने वाली घटना का स्मरण रखने वाले व्यक्ति अपने जीवन का एक क्षण भी बरबाद नहीं करते। अपने जीवन के प्रत्येक कर्तव्य को तत्परता से पूरा करने में लगे हुए, इस बात का प्रयत्न किया करते हैं कि वे मृत्यु आने से पूर्व ही अपने सारे कर्तव्यों को पूरा कर डालें, जिससे कि उस समय किसी कर्तव्य का उत्तरदायित्व अपूर्णि की दशा में दबाव न डाल सके।

जिस प्रकार कर्तव्यपरायण व्यक्ति असत्कर्मों से बचा रहता है, उसी प्रकार कर्तव्यहीन व्यक्ति अकर्मों में ही लगा रहता है। असत्कर्मों द्वारा पाप का संचय करते रहने वाले व्यक्ति का मृत्यु से भयभीत होना स्वाभाविक ही है। वह जानता है कि जिस समय मृत्यु आकर उपस्थित होगी उस समय जीवन भर किए हुए पापों के चित्र सामने आ जाएँगे जिससे पश्चाताप की भयानक अग्नि में जलना होगा। तब ऐसा कोई अवकाश शेष न रह जाएगा जिसमें उन असत्‌कर्मों का ताप सत्कर्मों से कम किया जा सके। यंत्रणा के बीच गर्हित अंत होने से शरीरोपरांत प्राप्त होने वाली गति भी गर्हित होगी, जिसे पता नहीं कितने युगों तक भोगना पड़े। इस भयानक संभावना से अकर्तव्यवान का भयभीत होना स्वाभाविक ही है।

मनुष्य जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है। यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेने का सुअवसर है। केवल मनुष्य शरीर ही ऐसा साधन है जिससे भगवत्-प्राप्ति का उपाय किया जा सकता है। अन्य सारी योनियाँ भोग योनियाँ हैं। उनमें भगवत्-प्राप्ति का उपाय नहीं किया जा सकता। इसको प्रमादवश नाना प्रकार के नरकदायक भोगों में नष्ट कर देना बहुत बड़ी हानि है।

जीवनकाल में जिन कार्यों, संस्कारों तथा वृत्तियों को अभ्यास द्वारा प्रमुख बनाया जाता है, वही मृत्यु के समय चलचित्र की तरह

मनुष्य के सम्मुख चक्कर लगाया करती हैं। उस समय मनुष्य उस स्मरण की भीड़-भाड़ में अपने सत्कर्मों को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया करता है। यदि उसने सुकृत किए रहे होते हैं तो वे उसके स्मृति-पटल पर आकर मित्र की तरह उसे सहारा दिया करते हैं। जिससे अनंत-पथ के यात्री को बड़ी सांत्वना मिलती है और वह सुख-शांतिपूर्वक शरीर त्याग कर सदाचार के अनुसार सुंदर लोक की प्राप्ति करता है।

इसके विपरीत जीवन के खाते में जिसने सत्कर्मों का संचय किया ही नहीं, बड़े चाव से असत्कर्मों में ही लगा रहा है, खोजने पर उस असहाय काल में उसे कोई सहारा किस प्रकार मिल सकता है? उसे अपने चारों ओर अपने असत्कर्म ही प्रेत-पिशाचों की तरह विकराल रूप रखकर नाचते और अट्टहास करते हुए दिखाई देंगे। उसे ऐसा लगेगा मानो उसके असत्कर्म उस पर व्यंग करते हुए कह रहे हैं—“ऐ मूर्ख मनुष्य! तूने हमको सुखदायी समझकर जो जीवन भर पाला है, अपनी उस मूर्खता का परिणाम देख ले और युग-युगांतरों के लिए जाकर नरक की यातना भोग।” निस्संदेह असत्कर्मों के लिए वह याम कितना भयानक रहा होता है। इसीलिए सावधान पुरुष अपने जीवन के खाते में सत्कर्मों का ही संचय करने का प्रयास किया करते हैं, जिससे अंतिमकाल में उन्हें भय-यातना से मुक्ति मिली रहे।

मृत्यु के भय से बचने का एक सीधा सरल सा उपाय है, सत्कर्मों का संचय करना। शास्त्रोक्त एवं लोकोक्त अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करना ही सुकृत्य माने गए हैं। इनका ज्ञान मनुष्य को सहज ही हो जाता है। किसी को दुःख न देकर यथासंभव सुख देना संसार के सभी सत्कर्मों का मूल आधार है। इस अभ्यास के करते रहने से जीवन

के खाते में सत्कर्मों की पूँजी इकट्ठी होती रहती है जो कि उस कठिन काल में एक विशाल संबल बनकर मनुष्य का निस्तार किया करती है।

सामान्यतः सुख समझकर जो अबोध व्यक्ति भोगपरायण बने रहते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। मनुष्य जीवन की विशेषता है भगवत्‌चिंतनपरायण रहना। भोग के चिंतन अथवा उनको प्राप्त करने के उपायों में लगा हुआ मनुष्य अपनी वृत्तियों को दूषित कर लेता है, संस्कार बिगाड़ लेता है, जिससे उसका चित्त सत्कर्मों की ओर उन्मुख नहीं होता। जो व्यक्ति भगवत्‌चिंतन अथवा सत्कर्मपरायण न रहकर भोगों में ही निरत रहता है; वह शरीर से मनुष्य होता हुआ भी गुण, कर्म, स्वभाव से पशु ही होता है। मनुष्य की भोगपरक पशु-प्रवृत्तियाँ उसके पतन एवं विनाश का कारण बनती हैं। भोग प्रवृत्तियों के पोषण से मनुष्य मृत्यु के उपरांत निकृष्ट योनियों में भ्रमण करता हुआ नारकीय यातना पाया करता है। जिस पुण्य-पूँजी से वह मनुष्य शरीर का अधिकारी बना होता है, वह नष्ट हो जाती है। फलतः वह निकृष्ट योनियों में जा गिरता है।

मनुष्येतर योनियों के जीव कर्म के अधिकारी नहीं होते। उन्हें हठात उन योनियों का भोग करना पड़ता है। कर्म का अधिकारी न होने से उसे किसी प्रकार का कर्मदोष लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। अस्तु, वह स्वभावतः एक योनि से दूसरी योनि में जाता हुआ चौरासी लाख चक्करों को पार करता हुआ अंत में मनुष्य योनि के उस अंतिम अवसर में आ पाता है, जिसमें वह कर्मों का अधिकारी होकर अपनी मुक्ति का प्रयास कर सकता है। इसी सुविधा के कारण वह अन्य पशु-पक्षियों की तरह कर्मफल से मुक्त नहीं होता। अब यह मनुष्य के हाथ की बात है कि वह सुकर्मों द्वारा अपनी मुक्ति का प्रयत्न करे अथवा कुकर्मों में

पड़कर पुनः चौरासी लाख के चक्कर में लौट जाए। इस प्रकार मानवेतर योनियों का भ्रमण जीव की प्रगति का सूचक है, जिसकी पराकाष्ठा मानव-योनि की प्राप्ति है। जब कि मानव की मृत्यु उसकी मुक्ति अथवा अधम योनियों में पुनः पतन का हेतु होती है तो मनुष्य योनि में आकर जीव या तो अपने सत्कर्मों द्वारा भगवान को प्राप्त कर मुक्त हो सकेगा अथवा असत्कर्मों द्वारा गिरकर फिर अधोगति में चला जाएगा। इस प्रकार मनुष्येतर प्राणियों की मृत्यु साधारण प्रगति मात्र होती है और मनुष्य की मृत्यु या तो उसके चरमोत्थान का हेतु बनेगी अथवा परमपतन की।

मृत्यु से डरना एक लज्जाजनक कायरता है। इस कायरता का समावेश होता उन्हीं में है जो इस दुर्लभ मानव-जीवन का सदुपयोग नहीं करते, इसे अकर्तव्य कर्मों तथा भोग-लिप्सा में नष्ट किया करते हैं। जो मेधावान व्यक्ति मानव-जीवन की दुर्लभता तथा उसके मूल्य-महत्त्व को समझते हुए सत्कर्मों में इसका सदुपयोग किया करते हैं, उन्हें मृत्यु का स्मरण आनंददायक होता है। उन्हें अपने सत्कर्मों के बल पर यह विश्वास रहा करता है कि जिस पुण्य-पूँजी को उन्होंने संचित किया है वह भवसागर की उत्तराई के लिए पर्याप्त है। अपने पुण्यों के बल पर वे इस भवसिंधु को पार कर अपने अंतिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति कर लेंगे और यदि इस पुण्य-पूँजी में कुछ कमी रह गई है तो पुराना वस्त्र छोड़कर नए वस्त्र धारण करने के समान पुनः नया जीवन, नया शरीर धारण करेंगे और आज से अधिक उन्नति एवं परिष्कृति। अपने अगले शरीर के अवसर पर वे और अधिक साधना करके अपने लक्ष्य को अवश्य पा लेंगे। इस प्रकार पुण्यात्मा पुरुष को मृत्यु की कल्पना से भय तो क्या एक आनंद पुलक की ही प्राप्ति होती है।

मृत्यु अवश्यंभावी है। सत्कर्मों का सहारा लेकर ही इसके त्रास से बचा जा सकता है। यह क्षणभंगुर मानव-जीवन प्रतिपल मृत्यु के प्रवाह में बहता चला जा रहा है। मनुष्य जिस क्षण से जन्म लेता है उसी क्षण से मृत्यु की ओर बढ़ने लगता है। जीवन की बढ़ोत्तरी तथा आयु की वृद्धि मृत्यु की निकटता ही है। पता नहीं किस समय वह अवश्यंभावी घड़ी आ जाए। इसलिए मनुष्य को सावधान रहकर अपने जीवन का अणु क्षण सत्कर्मों में ही लगाते रहना चाहिए।

प्रथम तो मृत्यु का भय एक अनुचित त्रास है। तब भी यदि उसका भय सताता ही है तो बुद्धिमत्तापूर्वक उसका लाभ भी उठाया जा सकता है। जैसे अपने अधिकारी से डरने वाला व्यक्ति अपने को अधिक से अधिक अनुशासित, आज्ञापालक तथा कार्यदक्ष बनाने का प्रयत्न किया करता है, उसी प्रकार मृत्यु से भयभीत व्यक्ति यदि चाहे तो भय के कारण भूत दुष्कर्मों को छोड़कर सत्कर्मों में संलग्न हो सकता है। लोग मृत्यु से डरते तो हैं लेकिन सच पूछा जाए तो वे सचाई के साथ उससे नहीं डरते। यदि उनके हृदय में मृत्यु के प्रति सच्चा भय रहे तो निश्चय ही पाप कर्मों की ओर से विमुख होकर पुण्य कर्मों की ओर अग्रसर हो उठें।

जिसे लोग प्रायः मृत्यु का भय कहते हैं, वह वास्तव में भोगों के छूट जाने की चिंता ही होती है, दुनिया छूट जाने का मोह ही होता है। लोग वास्तव में यह सोचकर दुखी होते हैं कि जब हम मर जाएँगे तो हमारी यह पली, यह बच्चे और यह धन-दौलत सब छूट जाएगी और हम एकाकी न जाने कहाँ-कहाँ भटकते रहेंगे? यह सब हमारे प्रियजन तथा धन-संपत्ति हमें फिर कहाँ मिलेगी? अच्छा होता मृत्यु न आती और हम सदा सर्वदा इनके संपर्क का सुख उठा सकते। इस प्रकार की मोह भावना ही बहुधा मृत्यु का भय बनकर सामने आया करती है। ऐसे

व्यक्ति कम ही होते हैं जिन्हें मृत्यु का भय अपनी अज्ञात दशा की चिंता के कारण सताता हो।

निस्संदेह मृत्यु का मोहजन्य भय बड़ी ही निकृष्ट भावना है। यह अकारण ही आत्मा के बंधन कड़े कर दिया करता है। संसार तो सभी को एक दिन छोड़ना पड़ता है। संपत्ति एवं प्रियजन सबके ही छूटते हैं। इस भवितव्यता में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ सकता। इस अवश्यंभाव्य के प्रति निरर्थक मोह करना सबसे बड़ी मूर्खता है।

मृत्यु अपार शांति के सागर में विश्राम करना है। मृत्यु जीवन का परिपक्व फल है। मृत्यु व्यक्त और अव्यक्त के मिलने का महापर्व है। मृत्यु नवजीवन का आरंभ है। सभी भाँति मृत्यु मंगलमय है, आनंदमय है। मृत्यु और जीवन का आनंद साथ है। महर्षि वाल्मीकि ने कहा है—

सहैव मृत्युर्वजति सहमृत्युर्निषीदति ।

गत्वा सुदीर्घमध्वानं सहमृत्युर्निवर्तते ॥

मृत्यु जीवन के साथ ही चलती है। वह साथ ही बैठती है और सुदूरवर्ती पथ पर भी साथ-साथ जाकर ही लौट आती है।

वस्त्र उतारने में जैसे कठिनाई न होनी चाहिए उसी तरह शरीर के जर्जरित रुग्ण चोले को उतार फेंकने में भी कष्ट न होना चाहिए। लेकिन ऐसा क्यों नहीं होता है, इसका उत्तर देते हुए विदेशी विचारक मेरीबेल कहता है—“यह सब इस कारण है कि हमने इससे अपनी जान पहचान बढ़ाने का उद्योग नहीं किया।” मृत्यु को तो हम जीवन व्यापार में खोकर बिलकुल ही भूल जाते हैं। हमारे मन में कभी मरने की कल्पना भी नहीं होती, जिसका एक न एक दिन हमें स्पर्श करना ही होता है।

सुकरात कहते थे—“मृत्यु के बारे में हमेशा प्रसन्न रहो।” मृत्यु प्रसन्न होने, आनंद मनाने का अवसर है, लेकिन हम इसके बारे में कभी सोचते विचारते भी नहीं। अन्य बातों की तरह मौत से मिलने की तैयारी भी हम करें तो मिल्टन के शब्दों में—“मृत्यु एक सोने की चाभी है जो अमरता के महल को खोल देती है” सत्य सिद्ध हो। सचमुच जो मरना जानते हैं उनके लिए मौत भयंकर नहीं होती।

**वस्तुतः** मृत्यु नए जन्म की तैयारी करने का अवसर है। जीवन मृत्यु की तैयारी करने का अवसर है तो हमारा समस्त जीवन क्या है? मृत्यु के पड़ाव तक पहुँचने का मार्ग। लेकिन हम यह भूल जाते हैं और जीवन-व्यापार अपने संग्रह के लिए करने लगते हैं। हमारा प्रत्येक कार्य ऐसा होता है मानो हमें इसी धरती पर रहना है। मृत्यु की असली तैयारी बहुत ही कम लोग कर पाते हैं, लेकिन वे ही मौत को भगवान का निमंत्रण मानकर, आनंद का-मंगल का पर्व जानकर प्रसन्न होते हैं।

जो मृत्यु का मर्म जानते हैं, वे इसी तरह मृत्यु को देखकर कविता रचने लगते हैं जैसे वसंत की बहार को, बरसात की रिमझिम को, पक्षियों के कलरव को देख सुनकर। प्रिय के धाम में प्रवेश पाने का अवसर है मृत्यु। पीहर में, माँ की ममतामयी अंक में मोद मनाने, आह्वाद प्राप्त करने की मंगलवेला है—मृत्यु। इसीलिए तो सुकरात मरते समय अमृत-तत्त्व का आस्वादन कर रहा था, अपने शिष्यों को हँसी-खुशी में मौत का अर्थ समझा रहा था। संत तुकाराम कीर्तन करते-करते मौत की गोदी में सो गए। गेटे “अधिक प्रकाश! अधिक प्रकाश!!” की चकाचौंध में ही लीन हो गए। लोकमान्य ने “यदा यदा हि धर्मस्य” वाला श्लोक बोलते-बोलते आँखें मूँद लीं। दयानंद “प्रभु-इच्छा की पूर्ति” का स्मरण करते हुए अनंत में विलीन हो गए। महात्मा बुद्ध “आत्मदीप का अर्थ”

बताते हुए चल बसे। बापू “हे राम, हे राम” कह रहे थे। स्वतंत्रता संग्राम के असंख्य सेनानी ‘अहलेवतन’ की याद में मस्ती भरे तराने गाते हुए मौत की गोद में कूद पड़े। हँसी-खुशी के साथ मौत का आलिंगन करने वाले अमर लोगों की गाथाओं से इतिहास भरा पड़ा है।

जीवन एक कहानी है मृत्यु उसका परिणाम। जीवन एक प्रश्न है तो मृत्यु उसका उत्तर। जीवन एक यात्रा है तो मृत्यु साँझ। दोनों का अनन्य साथ है। लेकिन गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त करना जीवन की सफलता का प्रमाण है और यह जीवन भर तैयारी करने पर ही निर्भर करती है। हमारा जीवन मृत्यु की तैयारी का अवसर है। आवश्यकता इस बात की है कि मृत्यु को याद करते हुए हम अपने कार्यक्रम निर्धारित करें। योजनाएँ बनाएँ। यह भी निर्विवाद सत्य है कि मृत्यु का गौरवपूर्ण सुखद-शांतिमय स्पर्श तभी प्राप्त होता है जब हम ‘स्व’ को भूलकर परमार्थ के लिए जीवन लगा देते हैं। किसी महान सत्य की साधना में, जन-सेवा में, परमार्थ में, जीवन लगा देने पर ही मौत के आनंदमय क्षण प्राप्त होते हैं मनुष्य को।



# हमारा सत्संकल्प

- ❖ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ❖ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ❖ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ❖ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचारसंयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ❖ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ❖ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ❖ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ❖ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ❖ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ❖ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ❖ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ❖ भूर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ❖ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ❖ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्व देंगे।
- ❖ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ❖ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ❖ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ❖ ‘हम बदलेंगे-युग बदलेगा’, ‘हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा’ इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

